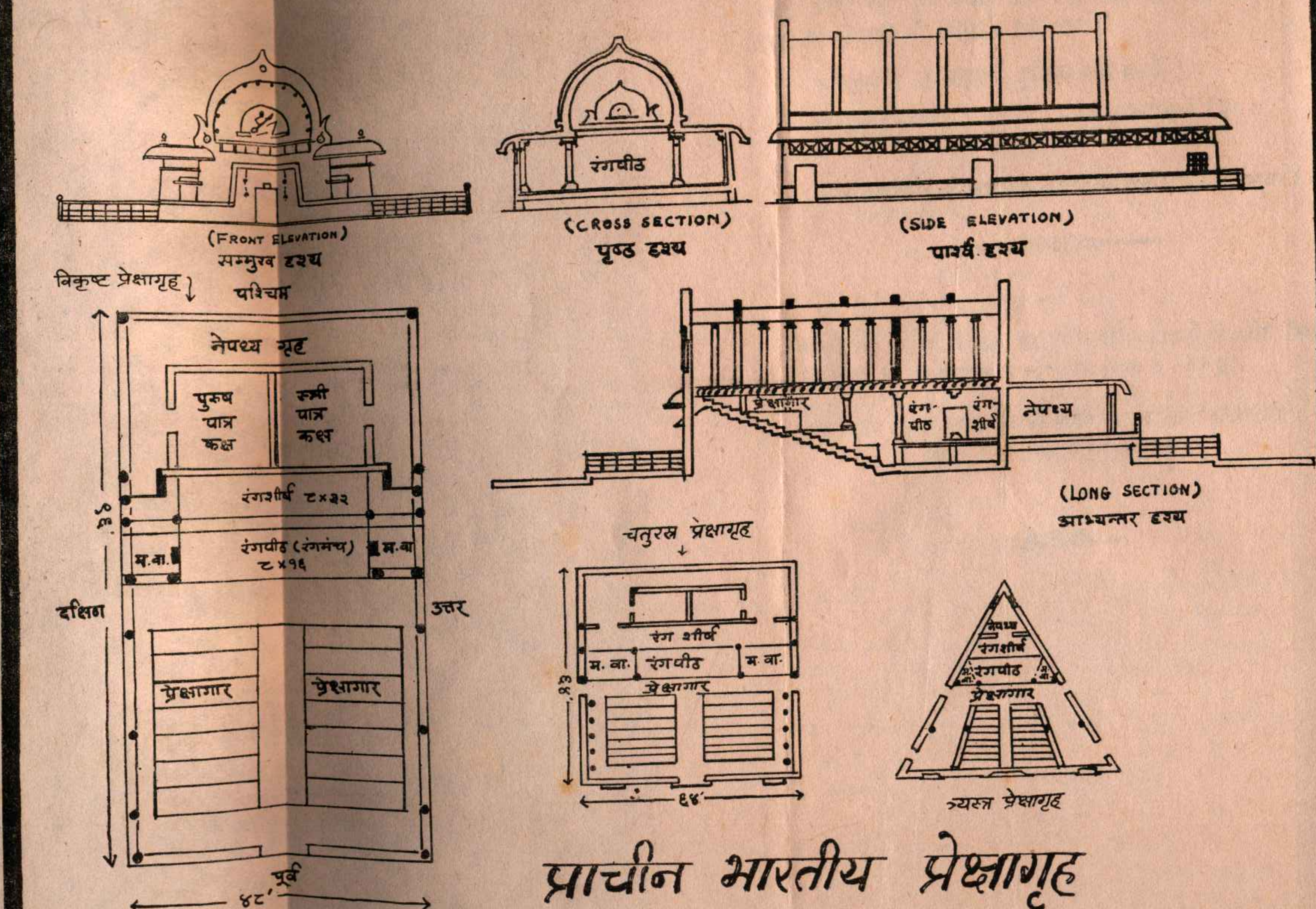


प्राचीन भारतीय प्रेक्षागृह

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रेक्षागृह के विषय में मुनियों का प्रश्न

भरतस्य वचः श्रुत्वा [1]पप्रच्छुर्मुनयस्ततः ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजनं रङ्गसंश्रयम् ॥ १ ॥
अथ वा याः क्रियास्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम् ।
भविष्यद्भिर्नरैः कार्यं कथं तन्नाट्यवेश्मनि ॥ २ ॥

भरत मुनि के वचनों को सुन पुनः मुनिगण बोले—भगवन् ! हम 'रंग मंच' पर होने वाले पूजन आदि का विधान सुनना चाहते हैं। अथवा उस रंगपीठ की भविष्य में मनुष्यों द्वारा किस प्रकार रचना (क्रियाएँ[1]) की जाए तथा इसके लक्षण, आकार, परिमाण तथा अधिकारी देवताओं का पूजन विधान क्या होगा इसे भी बतलाइये ॥ १–२ ॥

इहादिर्नाट्ययोगस्य नाट्यमण्डप[2] एव हि ।
तस्मात्तस्यैव तावत्त्वं लक्षणं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

क्योंकि नाट्य का प्रारम्भिक तत्त्व रंगमंच है अतएव आप सर्वप्रथम 'नाट्यगृह' के लक्षण (आकार, परिमाण, स्वरूप आदि) ही बतलाने की कृपा करें ॥ ३ ॥

नाट्यगृह के प्रकार

तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतोऽब्रवीत् ।
लक्षणं पूजनं चैव श्रूयतां नाट्यवेश्मनः ॥ ४ ॥

---

१. इस कारिका में क्रिया तथा यजन शब्दों के क्रमशः रखने का विशेष हेतु है। क्रिया शब्द 'नाटयमंडप' की रचना तथा लक्षण शब्द उसके विशेष आकार का बोधक है। भूतकाल के व्यक्तियों को बतलाना व्यर्थ है अतएव 'भविष्यद्भिः' शब्द का तथा देवगण के लिये संकल्पमात्र से सब कार्य सिद्ध हो जाने के कारण, 'नरैः' शब्द का प्रयोग किया गया है।

---

१. प्रत्यूचुः—ग०। २. कीर्तितो नाटयमण्डपः—च०।

मुनिगण की बात सुन भरत मुनि बोले—पहिले आप 'नाट्यगृह' का लक्षण (आकार आदि) तथा पूजन-विधान (दोनों) सुनिये ॥ ४ ॥

दिव्यानां[1] मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च।
यथाभावाभिनिर्वर्त्याः सर्वे भावास्तु मानुषा।
नराणां यत्नतः कार्या लक्षणाभिहिता क्रिया ॥ ५ ॥

श्रूयतां तद्यथा यत्र कर्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य वास्तु च पूजा च तथा योज्या [2]प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

इह प्रेक्षागृहं[3] दृष्ट्वा धीमता विश्वकर्मणा।
त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः ॥ ७ ॥
विकृष्टश्चतुरश्रश्च त्र्यश्रश्चैव तु मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम् । ८ ॥

देवताओं[1] को गृह तथा उपवन निर्माण में मानसी शक्ति प्राप्त है (अर्थात् देवगण अपने इच्छानुसार गृह तथा उपवन का निर्माण (मन के द्वारा ही) कर लेते हैं अतः उनके लिए निर्माण विधि आवश्यक नहीं है) किन्तु मनुष्यों के लिये तो सभी शास्त्र के नियमों से युक्त होकर ही सम्पन्न होने वाले कार्य हुआ करते हैं (इसलिये मनुष्यों को तो लक्षणानुसार ही नाट्यगृह का निर्माण करना चाहिये)।

(अतएव) अब आप नाट्यगृह के स्थान, उसका निर्माण-प्रकार (प्रमाण आदि) तथा पूजन-विधान को—जो कि प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये-सुनिये।

---

१. यह श्लोक आगे भी आया है तथा वहीं अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इससे यह भी सूचित होता है कि नाट्य गृहों की अधिक आवश्यकता मनुष्यों के लिये ही है, देवगण के लिये नहीं और इनका स्वरूप बतलाना भी इसी कारण आवश्यक है।

१. देवानां—ख०। २. च वास्तुषु—ग०।
३. प्रेक्षागृहाणान्तु—ग०।

बुद्धिमान विश्वकर्मा ने 'नाट्यगृह' के विषय में विचार कर उसके शास्त्रानुसार तीन प्रकार बतलाए हैं जिनके नाम हैं (१) विकृष्ट, (२) चतुरस्र तथा (३) त्र्यस्र। इनके माप (परिमाण) तीन प्रकार के होते हैं—(१) ज्येष्ठ (बड़ा), (२) मध्य (मझला) तथा (३) अवर सबसे छोटा ॥ ५-८ ॥

प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम्।
शतं चाष्टौ चतुःषष्टिर्हस्ता[१] द्वात्रिंशदेव च ॥ ९ ॥
अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं चतुःषष्टिस्तु मध्यमम्।
कनीयस्तु तथा वेश्म हस्ता[२] द्वात्रिंशदिष्यते ॥ १० ॥
देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं[३] नृपाणां मध्यमं भवेत्।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते ॥ ११ ॥
प्रेक्षागृहाणां[४] सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम्।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत् ॥ १२ ॥
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृतः।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभिः ॥ १३ ॥

इन नाट्यगृहों का परिमाण हाथ[१] तथा दण्ड के आधार पर निश्चित किया जाता है। इनके माप हैं एक सौ आठ, चौंसठ तथा बत्तीस हाथ की एक भुजा। एक सौ आठ हाथ वाला प्रेक्षागृह ज्येष्ठ, चौंसठ हाथ वाला मध्य तथा बत्तीस हाथ वाला कनिष्ठ होता है। देवताओं का नाट्यगृह,[२]

---

१. हस्त और दण्ड के लक्षण इसी अध्याय (२।१६।१९) में हैं।
२. कुछ लोगों का मत है कि विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र ही क्रमशः ज्येष्ठ,

---

१. द्वात्रिंशच्चेति निश्चितम्—ग०। २. द्वात्रिंशत्करमिष्यते—ग०। ३. भवनं ज्येष्ठं—ग० ४. 'प्रेक्षागृहाणां सर्वेषामित्यारभ्य नाट्यवेदप्रयोक्तृभि'-रित्यन्तं पद्यत्रयं ग० पुस्तके नास्ति।

ज्येष्ठ, राजाओं का मध्यम तथा शेष सामान्य प्रजाजन के लिए अवर नाट्यगृह का संविधान किया जाना चाहिए। इन सभी प्रेक्षागृहों में मध्यम परिमाण का प्रेक्षागृह प्रशस्त होता है क्योंकि उसमें पाठ्य तथा गीत को सुखपूर्वक सुना जा सकता है। इस प्रकार प्रेक्षागृहों के विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र नामक ये तीन प्रकार बतलाये गये॥ ९–१३॥

मध्यम तथा अवर होते हैं। अन्य लोगों का कहना है कि प्रत्येक के तीन तीन भेद होते हैं और इस प्रकार नौ भेद होंगे। अभिनवगुप्ताचार्य ने भी इसी व्यवस्था को उचित माना है। (एतान्येव त्रीणि ज्येष्ठादीनि इति केचित्, अन्ये तु प्रत्येकं त्रित्वमिति नवैतेऽत्र भेदा इत्याहुः, एतदेव युक्तम्—अ० भा० Vol. I. पृ० ४६) इसके हस्त तथा दण्ड के अनुसार भेदों की कल्पना कर लेने पर १८ भेद हो जाते हैं। ये निम्न प्रकार से बनते हैं। यथाः—

(१) हस्तप्रमाण ज्येष्ठ (२) हस्तप्रमाण ज्येष्ठ चतुरस्र (३) हस्तप्रमाण ज्येष्ठ त्र्यस्र (४) हस्तप्रमाण मध्य विकृष्ट (५) हस्तप्रमाण मध्य चतुरस्र (६) हस्तप्रमाण मध्य त्र्यस्र (७) हस्तप्रमाण अवर विकृष्ट (८) हस्तप्रमाण अवर चतुरस्र (९) हस्तप्रमाण अवर त्र्यस्र।

(१) दण्डप्रमण ज्येष्ठ विकृष्ट (२) दण्डप्रमाण ज्येष्ठ चतुरस्र (३) दण्डप्रमाण ज्येष्ठ त्र्यस्र (४) दण्डप्रमाण मध्य विकृष्ट (५) दण्डप्रमाण मध्य चतुरस्र (६) दण्डप्रमाण मध्य त्र्यस्र (७) दण्डप्रमाण अवर विकृष्ट (८) दण्डप्रमाण अवर चतुरस्र (९) दण्डप्रमाण अवर त्र्यस्र।

इन सभी नाट्यगृहों में मध्यम नाट्यगृह श्रेष्ठ होता है। इसका कारण है अभिनय की स्वाभिकता की रक्षा। अभिनवगुप्ताचार्य ने बतलाया है कि देवता, भूपति तथा प्रजा का जो यहाँ वर्णन किया है वे पात्र रूप में हैं, प्रेक्षक रूप में नहीं। पर प्रेक्षक के रूप में भी उन्हें यहाँ मानना उचित है क्योंकि ये नाट्यगृह उन्हें प्रेक्षक मान कर तथा उनकी सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए बनाए गए हैं। यूनान के बड़े मंचों में जो असुविधाएँ होती थीं वे इन मंचों में कदाचित् नहीं हो पाती थीं, यह सहज ही अनुमान भी किया जा सकता है।

नाट्यगृह के तीन परिमाण (माप)

कनीयस्तु स्मृतं त्र्यस्रं चतुरस्रं तु मध्यमम् ।
ज्येष्ठं विकृष्टं विज्ञेयं नाट्यवेदप्रयोक्तृभिः ॥ १४ ॥

त्र्यस्र सबसे छोटा और चतुरस्र मध्यम आकारवाला होता है तथा नाट्य वेद के विज्ञाता एवं प्रयोक्ताजन 'विकृष्ट' (ज्येष्ठ) को सबसे बड़े आकार वाला समझें ॥ १४ ॥

प्रेक्षागृहों के प्रमाण तथा लक्षण—

प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा ।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव हि निबोधत ॥ १५ ॥

अणू रजश्च लिक्षा यूका [1]यवस्तथा ।
अंगुलश्च तथा हस्तो दण्डश्चैव प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥

अणवोऽष्टौ रजः प्रोक्तं तान्यष्टौ बाल उच्यते ।
बालास्त्वष्टौ भवेल्लिक्षा यूका लिक्षाष्टकं भवेत् ॥ १७ ॥

यूकास्त्वष्टौ यवो ज्ञेयो यवास्त्वष्टौ तथाङ्गुलम् ।
अङ्गुलानि तथा हस्तश्चतुर्विंशतिरुच्यते ॥ १८ ॥

चतुर्हस्तो भवेद्दण्डो निर्दिष्टस्तु प्रमाणतः ।
अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम् ॥ १९ ॥

विश्वकर्मा ने (सभी प्रकार के) इन प्रेक्षागृहों के जो लक्षण तथा प्रमाण[1] निर्दिष्ट किए हैं इन्हें भी अब आप जानिये । अणु, रज, बाल, लीख

---

१. यहाँ जो माप तौल का प्रमाण बतलाया गया है वही (प्रायः) प्राचीन काल में प्रचलित था । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यही प्रमाण मिलता है । (द्रष्टव्य—अ० शा० २।१०) पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी इसी प्रकार का मापतौल का प्रमाण बतलाया गया है । द्रष्टव्य—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष (अष्टाध्यायी ५।४।८६ पर)

---

१. यवः प्रोक्तः—ग० ।

(जूं का अण्डा), जूं, जौ, अंगुली, हस्त तथा दण्ड ये नौ नाप के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परिमाण हैं। आठ अणुओं का एक रज होता है, आठ रजों का एक बाल, आठ बालों की एक लीख तथा आठ लीखों से एक जूं होती है। आठ जूं से एक जौ तथा आठ जौ का एक अंगुल होता है। चौबीस अंगुल का एक हाथ तथा चार हाथ का एक दण्ड कहलाता है। इसी प्रमाण विधि के अनुसार अब मैं प्रेक्षगृहों के आकार (प्रमाण) का निश्चय करता हूँ ॥ १५-१९ ॥

मनुष्यों के लिए निर्मित प्रेक्षागृह का स्वरूप—

चतुःषष्टिकरान्कुर्याद्दीर्घत्वेन तु मण्डपम्।
द्वात्रिंशेन तु विस्तारं मर्त्यानां यो भवेदिह[1] ॥ २० ॥

इस पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए जो नाटयगृह निर्माण किया जाए उसकी लम्बाई ६४ हाथ तथा चौड़ाई ३२ हाथ रखनी चाहिए ॥ २० ॥

विस्तीर्ण प्रेक्षागृह की अनुपयोगिता—

अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।
यस्मादव्यक्तभावं हि तत्र नाट्यं व्रजेदिति[2] ॥ २१ ॥

निर्मातागण इससे बड़ा नाट्यगृह निर्माण न करें क्योंकि प्रेक्षागृहों के अधिक विस्तीर्ण होने पर उनमें उच्चारित किये जाने वाले स्वरयुक्त पाठ्य (संवाद, गीत) तथा प्रस्तुत किया जाने वाला नाट्याभिनय अस्पष्ट होने लगेगा ॥ २१ ॥

मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चा[3]रितस्वरम्।
अनिस्सरणधर्मत्वाद्विस्वरत्वं[4] भृशं व्रजेत्[5] ॥ २२ ॥
[6]यश्चाप्यास्यगतो भावो[7] नानादृष्टिसमन्वितः।
स वेश्मनः प्रकृष्टत्वाद् व्रजेदव्यक्ततां पराम् ॥ २३ ॥

---

१. यो भवेदिह—ख० । द्वात्रिंशतश्च विस्तारात् मर्त्यानां योजयेदिह—ग० घ० । २. भवेदिति—ग० । ३. मुच्चरित—घ० ।
४. अनभिव्यक्तवर्णत्वात्—ग० । ५. व्रजेदिति—क० ।
६. यश्च लास्यगतो—ग०; यस्य लास्य—ख० घ० ।
७. भावसृष्टिरसाश्रय-—ग०, भावदृष्टिसमन्वितः—घ० ।

प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते ।

यस्मात्पाठ्यञ्च[1] गेयञ्च तत्र[2] श्रव्यतरं भवेत् ॥ २४ ॥

(प्रेक्षागृह के लम्बे होने पर) कथोपकथन तथा गीतों में वर्णों के ठीक तरह से (स्फुटरूप में) उच्चारण (प्रकट) न होने से अतिशय बेसुरापन (विस्वरता) हो जाएगा और अभिनेताओं के मुखों पर स्थित नाना दृष्टियों से समन्वित भाव भी (प्रेक्षागृह के विस्तीर्ण होने के कारण) अस्पष्ट हो जाएँगे। इसलिए सभी प्रेक्षागृहों में मध्यम परिमाण वाला प्रेक्षागृह ही ठीक है, जिनमें संवाद, वाद्य तथा गीत सुखपूर्वक सुने जा सकें ॥ २२—२४ ॥

देवानां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च ।
यत्नभावाभिनिष्पन्नाः[3] सर्वे भावा हि मानुषाः ॥ २५ ॥
तस्माद्देवकृतैर्भावैर्न विस्पर्द्धेत मानुषः ।

(सब प्रकार के) गृहों तथा उपवन की देवताओं[1] द्वारा मानसी सृष्टि की जाती है किन्तु मनुष्यों द्वारा सब रचनाओं को प्रयत्नपूर्वक (परिश्रम से) निर्माण करना होता है। अतएव मनुष्य को देवताओं की रचना शक्ति से विशेष स्पर्धा नहीं करनी चाहिए ॥ २५-२६ ॥

मानुषस्य[4] तु गेहस्य सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २६ ॥

भूमेर्विभागं पूर्वन्तु परीक्षेत प्रयोजकः ।

ततो वास्तुप्रमाणेन[5] प्रारभेत शुभेच्छया ॥ २७ ॥

समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा[6] गौरी च या भवेत् ।

---

१. देवों तथा मनुष्यों का अन्तर बतलाने का उद्देश्य यह है कि मनुष्यों की दृष्टि तथा कर्णेन्द्रिय शक्ति (श्रवणशक्ति) सीमित है और यह भी कि आगे के (सभी) वर्णन मनुष्यों के लिए ही किए गए हैं।

१. वाद्यञ्च—ग०। २. सुखं—ग०। ३. यत्नभावाद् विनिष्पन्नाः—ग, ख०। ४. मनुष्यस्य—ग० ५. प्रमाणञ्च—ग०। ६. कृष्णा गौरी च—ध०।

भूमिस्तत्रैव[1] कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ॥ २८ ॥
प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत् ।
अस्थि-कीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत् ॥ २९ ॥
शोधयित्वा वसुमतीं प्रमाणं निर्दिशेत्ततः ।

अब मैं मनुष्यों के नाट्यगृह का लक्षण कहता हूँ। नाट्यगृह निर्माण करवाने वाले (शिल्पी) को सर्वप्रथम पृथ्वी के भाग की (जिस पर नाट्यगृह बनवाया जाए) परीक्षा करनी चाहिए।

तथा वास्तुशास्त्र[1] के प्रमाणानुसार शुभभावना से युक्त हो कार्य प्रारम्भ करे। जो भूमि समतल, स्थिर, कड़ी हो एवं जिसका रंग काला या गौर वर्ण (सफेद या भूरा) हो उसी भूमि पर निर्मातागण नाट्यमण्डप का निर्माण करवाएँ। सर्वप्रथम उस भूमि का शोधन करे फिर उसको हल चलवा कर जुतवा दे और उसमें स्थित हड्डी, कीलें, खपड़े, घास (जो कि भूमि में ही बढ़ रहा हो) तथा झाड़ियों को भी साफ कर दे। इस प्रकार भूमि का शोधन कर फिर प्रमाण का (नाप आदि का) निर्देश करे ॥ २६–३० ॥

(निर्माण हेतु) शुभ नक्षत्र—

त्रीण्युत्तराणि[2] सौम्यश्च विशाखापि च रेवती ॥ ३० ॥
हस्ततिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि ।

नाट्यगृह के निर्माण में शुभ नक्षत्र हैं—तीन उत्तरा शब्द युक्त नक्षत्र (अर्थात् उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी तथा उत्तरा भाद्रपद), मृगशिरा (सौम्य), विशाखा, रेवती, हस्त, तिष्य तथा अनुराधा ॥ ३०–३१ ॥

---

१. प्राचीन काल में भवन-निर्माण शास्त्र अथवा वास्तुशास्त्र पर अधिक साहित्य उपलब्ध था। विश्वकर्मा इसके दूसरे आद्य प्रवर्तक थे तथा मयासुर आदि अनेक विद्वान् तथा शिल्पकार इसके निर्माता थे। सम्प्रति 'मानसारवास्तुसार' वास्तुशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें भी प्रेक्षागृह का वर्णन (किया गया) है जो लगभग नाट्यशास्त्र जैसा ही है या उससे भी अस्पष्ट।

---

१. तत्र तु—ग०। २. अयं श्लोकः क-ख-पुस्तके प्रक्षिप्तः समुपलभ्यते।

रज्जु-ग्रहण —

पुष्यनक्षत्रयोगेन[1] शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत् ॥ ३१ ॥
कार्पासं बाल्बजं[2] वापि मौञ्जं[3] वाल्कलमेव च ।
सूत्रं बुधैस्तु कर्तव्यं यस्य च्छेदो न विद्यते ॥ ३२ ॥
अर्धच्छिन्ने भवेत्सूत्रे स्वामिनो मरणं ध्रुवम् ।
त्रिभागच्छिन्नया[4] रज्ज्वा राष्ट्रकोपो विधीयते ॥ ३३ ॥
छिन्नायां तु चतुर्भागे प्रयोक्तुर्नाश उच्यते ।
हस्तात्प्रभ्रष्टया वापि कश्चित्त्वपचयो भवेत् ॥ ३४ ॥
तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन रज्जुग्रहणमिष्यते ।
कार्यं चैव प्रयत्नेन मानं नाट्यगृहस्य तु ॥ ३५ ॥
मुहूर्तेनानुकूलेन तिथ्या[5] सुकरणेन च ।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु पुण्याहं वाचयेत्ततः ॥ ३६ ॥
शान्तितोयं ततो दत्त्वा ततः[6] सूत्रं प्रसारयेत् ।

पुष्य नक्षत्र (के योग) में श्वेत वर्ण के सूत्र[1] को (मापने वाली) सफेद डोरी को) विस्तीर्ण करे। यह सूत्र कपास, ऊन, मूंज या किसी वृक्ष की छाल से निर्मित होना चाहिए।

बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (इस) डोरी को ऐसी बनानी चाहिए कि वह टूटने न पाए। क्योंकि डोरी के बीच (भाग) से टूटने पर नाट्यगृह के निर्माता या राज्य के स्वामी की निश्चित मृत्यु हो जाती है।

---

१. 'सूत्र' बनाने का जो विधान यहाँ दिया गया है मानसार-वास्तुशास्त्र में भी प्रायः वही मिलता है। इससे चूने में डुबोकर निशान बनाए जाते थे और तब नींव की खुदाई की जाती थी। आज भी ऐसा ही होता है।

---

१. योगे तु—क०, ग०। २. बादरं—ग०।
३. वाल्कलं मौञ्जमेव च—ग० ४. विभाग—क०; त्रिभागे—क०।
५. तिथ्या च करणेन च—घ०। ६. तत्र सूत्रं—घ०।

यदि रस्सी तिहाई भाग से टूट जाए तो राष्ट्रविप्लव[1] होता है। चौथे भाग से टूट जाने पर प्रयोक्ता[2] (अभिनय के प्रबन्धक या प्रस्तुत कर्ता) का नाश कहा गया है। यदि यह डोरी (भूमि मापन के समय) हाथ से खिसक कर गिर या टूट जाए तो भी कोई न कोई हानि अवश्य होती है। अतएव रस्सी को सदा बड़ी सावधानी से (मापने के लिए) ग्रहण करना चाहिए। अतः नाट्यगृह हेतु रज्जु से माप पयत्नपूर्वक की जानी चाहिए। इसके लिए मुहूर्त[3] और तिथि अनुकूल चाहिए और करण भी शुभ होना चाहिए तथा ऐसा होने पर फिर ब्राह्मणों को तृप्त कर (भोजन, दक्षिणा आदि देकर) पुण्याहवाचन करवाए। तदुपरान्त शान्ति का जल (छिड़क या) छोड़ते हुए सूत्र को धारण करे और उसे फैलाए ॥ ३१-३७ ॥

नाट्यगृह की भूमि योजना—

चतुष्षष्टिकरान्कृत्वा द्विधा कुर्यात्पुनश्च तान् ॥ ३७ ॥

पृष्ठतो यो भवेद्भागो द्विधो भूतस्य तस्य तु[1]।

तस्यार्धेन[2] विभागेन रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥

पश्चिमे च[3] विभागेऽथ नेपथ्यगृहमादिशेत्।

(विकृष्ट तथा मध्यम[3]-परिमाण के प्रेक्षागृह की रचना के लिए) चौसठ

---

१. 'राष्ट्रकोप' या राष्ट्रविप्लव का अर्थ है राजनैतिक परिवर्तन या उथलपुथल। प्रयोक्ता का अर्थ है अभिनयनिर्देशक या नाट्याचार्य।

२. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार एक मुहूर्त ४८ मिनट का कालांश होता है। चान्द्रतिथि के अर्धभाग को करण कहते हैं जो ११ होते हैं। इन्हें प्रत्येक मुहूर्त के देखते समय विचारना होता है। (देखिये सूर्यसिद्धान्त २।६७, ६८)।

३. 'मध्य विकृष्ट' नाटचगृह की रचना का यह क्रम है कि इसकी लंबाई ६४ तथा चौड़ाई ३२ हाथ है। दो भागों में बाँट कर पिछले भाग को जो कि १६ हाथ का ही ८, ८, हाथ के दो भागों में विभक्त किया जाए जिसमें पिछला भाग नेपथ्यगृह का तथा अगला भाग रंगपीठ और रंगशीर्ष हो जाता है। नेपथ्यगृह

---

१. द्विधाभूतो भवेच्च यः—ग०। २. सममर्धं—क०। ३. तु पुनर्भागे—ग०।

हाथ (लंबी) भूमि को नाप कर उसे दो भागों में विभक्त करे। इनमें जो पीछे का आधा भाग है उसे दो भागों में पुनः बाँट कर उसके अगले पर 'रंगपीठ' और 'रंगशीर्ष' का निर्माण करे तथा शेष पिछले आधे भाग पर (जो रंग-शीर्ष के पीछे है) 'नेपथ्य गृह' को बनवाना चाहिए ॥ ३७–३८ ॥

आधारशिला स्थापन हेतु उत्सव विधान—

विभज्य[1] भागान्विधिवद्यथावदनुपूर्वशः ॥ ३९ ॥
शुभे नक्षत्रयोगे च मण्डपस्य निवेशनम् ।
शङ्खदुन्दुभिनर्घोषैर्मृदङ्गपणवादिभिः ॥ ४० ॥
सर्वातोद्यैः[2] प्रणुदितैः स्थापनं कार्यमेव तु ।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि [3]पाषण्ड्याश्रमिणस्तथा ॥ ४१ ॥
काषायवसनाश्चैव विकलाश्चैव ये नराः ।

इस प्रकार पूर्व कथित विधि के अनुसार भूमि के भागों को यथावत् विभाजन कर शुभ नक्षत्र तथा योग में शंख दुन्दुभि आदि मंगल वाद्यों के नाद घोष के साथ तथा मृदंग, पणव[1] आदि बाजों को वृन्दवादन सहित बजवाते हुए नाट्य-मण्डप (नाट्यगृह) की आधारशिला स्थापित करनी चाहिए।

और इस मंगलमय उत्सव के अवसर पर अनिष्टकारी जो भी (पदार्थ या मनुष्य) हों उन्हें तथा पाषण्ड[2], संन्यासी, काषायवस्त्रधारी तथा विकलांग मनुष्यों को भी (उस समय) इस स्थान से हटा देना चाहिए ॥ ३९–४२ ॥

अभिनेताओं के विश्राम तथा सज्जा के उपयोगार्थ बनाया जाता था (प्रेक्षागृह का रेखाचित्र देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा) विशेष विवेचन के लिए भूमिका तथा परिशिष्ट भी द्रष्टव्य।

१. अवनद्ध वाद्य का एक प्रकार।

२. यहाँ 'पाखण्ड का बुरा कार्य नहीं किन्तु किसी अन्य समाज या संघ में अन्तर्भुक्त व्यक्ति है। पीछे चलकर इसका अर्थ ढोंगी हो गया।

---

१. विकल्प्य—ख०। २. सर्वातोद्यनिनादैश्च—घ०। ३. पाषण्डाश्रमि–ग।

निशायाश्च बलिः कार्यो नानाभोजनसंयुतः ॥ ४२ ॥
गन्धपुष्पफलोपेतो दिशो दश समाश्रितः ।
पूर्वेण शुक्लान्नयुतो नीलान्नो[1] दक्षिणेन च ॥ ४३ ॥
पश्चिमेन बलिः पीतो रक्तश्चैवोत्तरेण तु ।
यादृशं[2] दिशि यस्यान्तु दैवतं परिकल्पितम् ॥ ४४ ॥
तादृशस्तत्र दातव्यो बलिर्मन्त्रपुरस्कृतः ।

(नींव रखने के दिन) रात्रि में अनेक प्रकार के भोजनों से युक्त, गन्ध, पुष्प और फलों से समन्वित दशों दिशाओं में (उनके अधिष्ठाता रक्षक, देवताओं के हेतु) बलि देना चाहिए। पूर्व दिशा में शुक्ल (सफेद) अन्न की, दक्षिण में नीले, पश्चिम में पीले तथा उत्तर में लाल अन्न की बलि दी जानी चाहिए। जिस दिशा का जो देवता अधिदेव के रूप में बतलाया गया है उस दिशा में वैसी ही मन्त्रों के सहित बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ४२–४५ ॥

स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च दातव्यं घृतपायसम् ॥ ४५ ॥
मधुपर्कस्तथा राज्ञे कर्तृभ्यश्च गुडौदनम् ।
नक्षत्रेण तु कर्त्तव्यं मूलेन स्थापनं बुधैः ॥ ४६ ॥
मुहूर्त्तेनानुकूलेन तिथ्या[3] सुकरणेन च ।

गृह स्थापना के (उत्सव के) समय ब्राह्मणों को [1]घृतयुक्त पायस (खीर), राजा को मधुपर्क तथा (अभिनयादि समस्त) कार्य करने वाले व्यक्तियों को गुड धानी दी जानी चाहिए।

---

१. 'घृत' का तात्पर्य मक्खन है। 'मधुपर्क' दही में शहद मिलाकर श्रद्धा-विधिपूर्वक राजा आदि को दिया जाता था (दे० आश्व० गृ० सूत्र अ० १ तथा मनुस्मृति अ० २) और यह वैदिक काल से आज तक एक परम्परागत सदाचार के रूप में प्रचलित है। (१) दही, (२) घृत, (३) जल (४) मधु तथा (५) शक्कर मिलाई जाती है।

---

१. नीलाभो दक्षिणेन च—घ०

२. यस्यां यच्चाधिदैवं तु दिशि सम्परिकीर्तितम्—घ०।

३. तिथ्यानुकरणेन च—क०।

बुद्धिमान जन इस मण्डप की स्थापना मूल नक्षत्र में अनुकूल मुहूर्त तिथि तथा शुभ करण में करें ॥ ४५–४७ ॥

भित्ति तथा स्तम्भों का निर्माण—

एवन्तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्मप्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥
भित्तिकर्मणि निर्वृत्ते स्तम्भानां स्थापनं ततः ।

(पूर्व प्रतिपादित विधि से) बाह्य मंडप की इस प्रकार स्थापना कर फिर भित्ति[1] कर्म (दीवारें बनाने का कार्य) प्रारम्भ करे और उसके पूर्ण हो जाने पर खम्भों की स्थापना की जाए ॥ ४७–४८ ॥

तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च ॥ ४८ ॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन वा ।
आचार्येण सुयुक्तेन त्रिरात्रोपोषितेन च ॥ ४९ ॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं प्राप्ते सूर्योदये शुभे ।

इन स्तम्भों की स्थापना शुभ तिथि, नक्षत्र, योग तथा (शुभ) करण में की जानी चाहिए । इनकी स्थापना के समय रोहिणी या श्रवण नक्षत्र होना चाहिए ।

एकाग्रचित नाट्याचार्य तीन दिन उपवास रखने के पश्चात् सूर्योदय की शुभ वेला में स्तम्भों की स्थापन-विधि (पूर्ण) करे ॥ ४८–५० ॥

[चन्दनन्तु भवेत् ब्राह्मं क्षात्रं खादिरमेव च ।
धावाख्यं वैश्यवर्णं स्याच्छूद्रं सर्वद्रुमैस्स्मृतम् ।]

(प्रक्षिप्त) ब्राह्मण स्तम्भ चन्दन का, क्षत्रिय स्तम्भ खैर (खदिर) का, वैश्य स्तम्भ धव (धाय) का तथा अन्य सभी वृक्षों का शूद्र स्तम्भ होता है ।

---

१. ये दीवार ईटों की बनाई जाती थीं, क्योंकि दर्शकों के उपवेशन स्थल ईटों से बनाए जाने का नाटचशास्त्र में निर्देश मिलता है (अतएव मिट्टी तथा ईटों से दीवार बनाई जाती थी ऐसा मानना उचित है) संभवतः भित्तियाँ १८ हाथ ऊँची बनानी होती थीं क्योंकि इससे कम होने पर विवरण से संगति नहीं बैठती ।

प्रथमे ब्राह्मणस्तम्भे सर्पिस्सर्षपसंस्कृतः[1] ॥ ५० ॥
सर्वशुक्लो विधिः कार्यो दद्यात् पायसमेव च ।
ततश्च क्षत्रियस्तम्भे वस्त्रमाल्यानुलेपनम् ॥ ५१ ॥
सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम् ।
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे ॥ ५२ ॥
सर्वं पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च घृतौदनम् ।
शूद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक्पूर्वोत्तराश्रये ॥ ५३ ॥
नीलप्रायं [2]प्रयत्नेन कृसरं[3] च द्विजाशनम् ।

(ईशान कोण में) सर्वप्रथम स्थापित किये जाने वाले ब्राह्मणस्तम्भ का घी और सरसों से संस्कार करे। इसकी स्थापना के अवसर पर पूजा की समग्र विधि श्वेत वर्ण की वस्तुओं से सम्पन्न की जानी चाहिए तथा ब्राह्मणों को भोजन में पायस (खीर) प्रदान करना चाहिए।

और (आग्नेय कोण में) क्षत्रिय स्तम्भ की स्थापना के अवसर पर वस्त्र, पुष्प और चन्दन सभी रक्त वर्ण के चढ़ाए जाने चाहिए तथा ब्राह्मणों को भोजन में गुड़ चीनी प्रदान करना चाहिए।

(नैऋत्य दिशा में) वैश्य स्तम्भ की स्थापना नाट्यगृह के पश्चिमोत्तर दिग्भाग में करना चाहिये। इसकी स्थापना के समय सभी पूजन सामग्री पीले रंग वाली वस्तुओं की रखनी चाहिये तथा ब्राह्मणों को भोजन में घृत और भात दिया जाना चाहिये।

पूर्वोत्तर (वायव्य) कोण में स्थापित किये जाने वाले शूद्र स्तम्भ की सभी विधियाँ प्रयत्नपूर्वक नीले वर्ण की सामग्री द्वारा सम्पन्न की जानी चाहिए तथा ब्राह्मणों को भोजन के रूप में कृसर[1] (खिचड़ी) देनी चाहिये ॥ ५४–५४ ॥

---

१. तिल मिश्रित चावलों की खिचड़ी को कृसर कहते हैं जो दूध में पकाई जाए।

---

१. सर्पिस्सर्षपसंस्कृते—ग० । २. प्रदातव्य—ग० । ३. कृसरा—ख० ।

पूर्वं तु[1] ब्राह्मणस्तम्भे शुक्लमाल्यानुलेपने ॥ ५४ ॥
निक्षिपेत्कनकं मूले [2]कर्णाभरणसंश्रयम् ।
ताम्रं चाधः प्रदातव्यं स्तम्भे क्षत्रियसंज्ञके ॥ ५५ ॥
वैश्यस्तम्भस्य मूले तु रजतं सम्प्रदापयेत् ।
शूद्रस्तम्भस्य मूले तु दद्यादायसमेव च ॥ ५६ ॥
शेषेष्वपि[3] च निक्षेप्यं स्तम्भमूलेषु काञ्चनम् ।

पहले ब्राह्मण स्तम्भ नीचे (मूल में)—जो कि सफेद वस्त्र, पुष्प तथा चन्दन से युक्त है—कान के आभूषण के लिये पर्याप्त सोना डाला जाए ।

क्षत्रिय स्तम्भ के नीचे तांबा तथा वैश्य स्तम्भ के नीचे चाँदी डालना चाहिए । शूद्र स्तम्भ के मूल में लोहा तथा शेष स्तम्भों के मूल में सोना डालना चाहिए ॥ ५६–५७ ॥

स्वस्तिपुण्याहघोषेण जयशब्देन चैव हि ॥ ५७ ॥
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं [4]पुष्पमालापुरस्कृतम् ।
रत्नदानैः सगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः ॥ ५८ ॥
ब्राह्मणांस्तर्षयित्वा तु स्तम्भानुत्थापयेत्ततः[5] ।
अचलं चाप्यकम्पञ्च तथैवावलितं[6] पुनः ॥ ५९ ॥
स्तम्भस्योत्थापने सम्यग्दोषा ह्येते प्रकीर्तिताः ।
अवृष्टिरुक्ता चलने वलने मृत्युतो[7] भयम् ॥ ६० ॥

---

१. इन स्तम्भों में की गई रंगों की व्यवस्था विविध वर्णों की सूचक है । यथा ब्राह्मण स्तम्भ का श्वेत वर्ण सात्विकता और ज्ञान का, क्षत्रिय का लाल वर्ण शौर्य तथा राजसवृत्ति का, वैश्य का पीतवर्ण सुवर्ण तथा धनसम्पत्ति का तथा शूद्रों का नीलवर्ण तामस वृत्ति का बोधक है ।

---

१. पूर्वोक्त—क; पूर्वं च० ख० ।
२. कण्ठाभरण—क० ।
३. सर्वेष्वेव तु; शेषेष्वेव च—क० ।
४. पर्णमाला—ग० ।
५. स्तम्भमु—ग० ।
६. वाचलितं—ग० ।
७. मृतितो—घ० ।

कम्पने परचक्रात्तु भयं भवति[1] दारुणम् ।
दोषैरेतैर्विहीनं तु स्तम्भमुत्थापयेच्छिवम् ॥ ६१ ॥

स्तम्भों का स्थापन स्वस्तिवाचन तथा पुण्याह वाचन के घोष के साथ जय शब्द को उच्चारित करते हुए करना चाहिए। स्थापन किये जाने वाले स्तम्भ पुष्पमाला से सजाना चाहिए।

ब्राह्मणों को रत्नदान, गोदान तथा वस्त्रों के दान से अतिशय संतुष्ट करने के पश्चात् स्तम्भों को उठाए। इन स्तम्भों को इस प्रकार उठाए कि ये न चले, न कम्पित हों और न ही झुके या मुड़े ही। क्योंकि स्तम्भों को उठाने के समय ऐसा होना अनिष्टकारी होने के कारण दोष माना गया है। यदि स्तम्भ चलायमान हो तो अवृष्टि, मुड़ जाने पर मृत्युभय तथा स्तम्भ के कम्पित होने पर शत्रुमण्डल से दारुणभय उपस्थित हो जाता है।

(अतएव) इन (उपर्युक्त) दोषों को बचाते हुए (शिवावह) स्तम्भ को उठाना चाहिए ॥ ५७–६१ ॥

पवित्रे ब्राह्मणस्तम्भे दातव्या दक्षिणा च गौः ।
शेषाणां भोजनं कार्यं स्थापने कर्तृसंश्रयम् ॥ ६२ ॥

पवित्र ब्राह्मण स्तम्भ की स्थापना के समय गौ की दक्षिणा (दक्षिणा के रूप में गौ) दी जाय तथा अवषिष्ट स्तम्भों की स्थापना के समय निर्माण कर्ताओं (शिल्पी, कर्मकारों आदि) को भोजन करवाना चाहिए ॥ ६२ ॥

मन्त्रपूतश्च[2] तद्देयं नाट्याचार्येण धीमता ।
पुरोहितं नृपश्चैव भोजयेन्मधुपायसैः[3] ॥ ६३ ॥
कर्तृनापि तथा सर्वान् [4]कृसरां लवणोत्तराम् ।
सर्वमेवं विधिं कृत्वा सर्वातोद्यैः प्रवादितैः ॥ ६४ ॥
अभिमन्त्र्य यथान्यायं स्तम्भानुत्थापयेच्छुचिः ।

---

१. वदति—ग० घ० । २. मन्त्रपूतं—ग० ।
३. मधुपायसम्—ग० घ० । ४. कृसरं लवणोत्तरम्—ग० घ० ।

मन्त्रोच्चार सहित यह भोजन बुद्धिमान नाट्याचार्य द्वारा करवाया (या दिया) जाना चाहिए। इस भोजन में पुरोहित तथा राजा को मधुयुक्त खीर खिलाए तथा अन्य सभी कार्यकर्ताओं को नमक से युक्त खिचड़ी का भोजन करवाना चाहिए।

इस प्रकार सभी विधि-विधानों को सम्पन्न कर तथा सभी वाद्यों को बजवाते हुए पवित्र होकर अभिमन्त्रित एवं विधिवत मन्त्रोच्चारण करते हुए स्तम्भों को उठाए ॥ ६३–६५ ॥

यथाचलो [1]गिरिर्मेरुर्हिमवांश्च महाबलः ॥ ६५ ॥

जयावहो नरेन्द्रस्य तथा त्वमचलो भव[2]।

(वह इस मन्त्र का उच्चारण कर स्तम्भों को अभिमन्त्रित करे) जैसे सुमेरु पर्वत[1] स्थिर है और हिमाचल महाबलवान् है, हे स्तम्भ, तू भी उसी प्रकार अचल होकर राजा को विजय देने वाला बन।

स्तम्भद्वारश्च भित्तिश्च[3] नेपथ्यगृहमेव च ॥ ६६ ॥

एवमुत्थापयेत्तज्ज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा।

नाट्यगृहनिर्माण के विधानज्ञ पुरुषों के द्वारा इसी प्रकार विधिविधानानुसार (शास्त्र विधि से किये जाने वाले कर्मों के साथ) स्तम्भ, द्वार, भित्तियों तथा नेपथ्यगृह को उठाना चाहिए।

मत्तवारणी—

रङ्गपीठस्य पार्श्वे[4] तु कर्त्तव्या मत्तवारणी ॥ ६७ ॥

चतुःस्तम्भसमायुक्ता रङ्गपीठप्रमाणतः।

अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्तव्या मत्तवारणी ॥ ६८ ॥

उत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्तव्यं रङ्गमण्डलम् (रङ्गपीठकम्)।

---

१. स्तम्भों का धार्मिक विधि से स्थापन जहाँ भी हो प्रायः सर्वत्र उसकी सुमेरु से उपमा देने की परिपाटी रही है (द्रष्टव्य—मानसारवास्तुशास्त्र १५।२१३, २१४)।

---

१. गुरुर्मेरु—ग०। २. वह—ग०। ३. भित्तिश्च—क०।
४. पश्चात्तु—क०, ग०।

रंगपीठ (की दोनों) बाजू में [दोनों ओर] रंगपीठ के माप (लंबाई) के बराबर चार खम्बों से युक्त मत्तवारणी[1] की रचना की जावे। इस (मतवारणी) की ऊँचाई डेढ़ हाथ रखी जाए और इन दोनों मत्तवारणियों के बराबर ही रंगपीठ की ऊँचाई रहे ॥ ६७–६९ ॥

तस्यां माल्यश्च धूपश्च गन्धं वस्त्रन्तथैव च ॥ ६९ ॥

नानावर्णानि देयानि तथा भूतप्रियो बलिः।

मत्तवारणी के निर्माण (मुहूर्त) के अवसर पर भूतों को इष्ट पदार्थों की बलि तथा अनेक वर्णों के पुष्प, मालाएँ, वस्त्र तथा अनेकविध धूप और सुगन्धित पदार्थ (इत्र, तैल आदि) अर्पण करने चाहिए ॥६९–७०॥

आयसं[1] तत्र दातव्यं स्तम्भानां कुशलैरधः[2] ।

भोजने[3] कृसराश्चैव दातव्यं ब्राह्मणाशनम् ॥ ७० ॥

दक्ष शिल्पीजन इसके स्थापित किये जाने वाले खम्भों के मूल में लोहा रख दें और ब्राह्मणों को खिचड़ी का भोजन प्रदान करें[2] ॥ ७१ ॥

एवं विधिपुरस्कारैः कर्त्तव्या मत्तवारणी[4] ॥ ७२ ॥

इस प्रकार विधिवत् देवताओं को वस्त्र आदि प्रदान करते हुए मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए ॥ ७२ ॥

रङ्गपीठ—

रङ्गपीठं ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा।

रङ्गशीर्षन्तु कर्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम् ॥ ७३ ॥

---

१. मत्तवारणी रंगपीठ के दोनों ओर बनाये जाने वाले दो बरामदों की शक्ल में होती थी और इसके चारों कोनों में ४ खम्भे लगाये जाते थे। मत्तवारणी का प्रवेश और निर्गम करने वाले पात्रों के क्रमशः प्रतीक्षा और विश्राम करने में उपयोग किया जाता था तथा अन्य कार्यों में भी उपयोग होता था। मत्तवारणी के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है [इसका विशेष विवेचन, प्रस्तावना तथा परिशिष्ट में भी द्रष्टव्य है] इसकी ऊंचाई डेढ़ हाथ रखी जाती थी।

२. (कुछ प्रतियों में) यह श्लोक प्रक्षिप्त है।

---

१. आसनं—क०, पायसं ग०। २. कुशलाय तु—घ०।
३. भोजनं कृसरा—क०। ४. मत्तवारुणी—ख०।

कार्यं द्वारद्वयञ्चात्र नेपथ्यगृहकस्य तु ।

इसके बाद (वास्तु शास्त्र आदि के) विधानानुसार 'रङ्गपीठ' का निर्माण किया जाए। इस रंगशीर्ष को षड्दारुक[1] से युक्त करते हुए बनाया जाए। इसके (समीपवर्ती) नेपथ्यगृह में दो दरवाजे रखने चाहिए॥

पूरणे मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः ॥ ७४ ॥
लाङ्गलेन[1] समुत्कृष्य निर्लोष्टतृणशर्करम्[2] ।
लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु धुर्यौ योज्यौ प्रयत्नतः ॥ ७५ ॥
कर्तारः पुरुषाश्चात्र येऽङ्गदोषविवर्जिताः[3] ।
अहीनाङ्गैश्च वोढव्या मृत्तिका पीवरैर्नवैः[4] ॥ ७६ ॥
एवंविधं[5] प्रकर्तव्यं रङ्गशीर्षं प्रयत्नतः ।

इस रंग शीर्ष को भरने के लिये हल से जोत कर ढेलों, घास तथा कंकड़ों से रहित की हुई काली[2] मिट्टी प्रयत्नपूर्वक डालनी चाहिए। हल में श्वेतवर्ण के बैल जोतने चाहिए और इस हल को जोतने वाले मनुष्य अंगहीन (हीन या विकलांग) नहीं होने चाहिए। यह मिट्टी सुदृढ़ तथा बलवान् मनुष्यों के द्वारा ढोई जानी चाहिएँ जो विकलांग न हों। इस प्रकार बड़े (ध्यान तथा) प्रयत्नपूर्वक रंगशीर्ष का निर्माण किया जाए ॥७४–७७॥

---

१. लकड़ी के २ खड़े, २ आड़े और २ तिरछे डंडे लगाकर बनाया गया चौखट षड्दारुक कहलाता है। इसे रंगशीर्ष के नीचे लगा देने से उसमें एक तो मजबूती आएगी, दूसरे शब्दों को गूंजने में सहायता मिलेगी। षड्दारुकम् की व्याख्या है :—षण्णां दारूणां समाहारः षड्दारुकम्। [देखिये मानचित्र तथा परिशिष्ट भी]।

२. काली मिट्टी मजबूत और चिपकने वाली होने से रंगमंच मजबूत रहेगा तथा टिकाऊ भी। इसी कारण प्रयत्नपूर्वक काली मिट्टी के भराव करने का मुनि द्वारा निर्देश दिया गया।

---

१. लाङ्गले च—क०। २. निलोष्ठतृणशर्करा—ग०।
३. शब्ददोषविवर्जिताः—क०।
४. पिटकैर्नवैः—क०, पीटकैर्नवैः—घ०। ५. एवं विधैश्च—घ०।

कूर्मपृष्ठं न कर्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च ॥ ७७ ॥
शुद्धादर्शतलाकारं[1] रङ्गशीर्षं[2] प्रशस्यते ।

यह रंगशीर्ष न तो कछुए की पीठ के समान (बीच में अधिक उभरा हुआ) और न मछली की पीठ के समान (लंबा एवं दूर तक उभरा हुआ) ही बनाना चाहिए। शुद्ध दर्पण के समान समतल धरातल वाला रंगशीर्ष ही श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ ७७–७८ ॥

रत्नानि चात्र देयानि पूर्वे वज्रं विचक्षणैः ॥ ७८ ॥
वैडूर्यं[3] दक्षिणे पार्श्वे स्फटिकं पश्चिमे तथा ।
प्रवालमुत्तरे चैव मध्ये तु कनकं भवेत् ॥ ७९ ॥
एवं रङ्गशिरः कृत्वा दारुकर्म प्रयोजयेत्[4] ।

और चतुर शिल्पीजन के द्वारा इसमे रत्नों (को भी) रखना चाहिए। पूर्व की ओर हीरा, दक्षिण में वैदूर्य (लहसुनिया), पश्चिम में स्फटिक तथा उत्तर में प्रवाल (मूँगा) को लगाना चाहिए। इसके मध्य भाग में सोना रखा जाए। इसी प्रकार रङ्गशीर्ष[1] का निर्माण कर लेने पर फिर लकड़ी का काम आरम्भ करवाना चाहिये ॥ ७८–८० ॥

रंगमञ्च की शोभार्थ दारुकर्म तथा अन्य सजावट के कार्य—

ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं नानाशिल्पप्रयोजितम् ॥ ८० ॥
नानासञ्जवनोपेतं[5] बहुव्यालोपशोभितम् ।
ससालभञ्जिकाभिश्च[6] समन्तात्समलंकृतम् ॥ ८१ ॥

---

१. रंगशीर्ष तथा रंगपीठ ये दोनों प्रेक्षागृह में दो भिन्न विभाग हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने इन्हें पृथक् मान कर ही व्याख्या की है जो उचित होती है। (विवेचन अन्यत्र द्रष्टव्य)।

---

१. शुद्धादर्शतलप्रख्यं—ख०। २. रङ्गपीठं—घ०।
३. वैदूर्यं—ख०, ग०। ४. प्रवर्तयेत्—ग०। ५. भञ्जवरो—ख०, ग०।
६. अट्टालभञ्चिकाभिश्च—ग०, भवेयुः चात्र विन्यस्ता विविधाः शालभञ्जिकाः इति क० पु० अधिकम्।

[1]निर्व्यूहकुहरोपेतं नानाग्रथितवेदिकम् ।
नानाविन्याससंयुक्तं [2]चित्रजालगवाक्षकम् ॥ ८२ ॥
सुपीठधारणी[3]युक्तं कपोतालीसमाकुलम् ।
नानाकुट्टिमविन्यस्तैः स्तम्भैश्चाप्युपशोभितम् ॥ ८३ ॥
एवं काष्ठविधिं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्[4] ।

यह लकड़ी का कार्य बहुत सोच विचार तथा निरीक्षण करते हुए (ऊहप्रत्यूह[1]) किया जाए । इसमें विविध प्रकार की कारीगरी [शिल्प] रहनी चाहिए । इसमें अनेक तख्तों का—जो भित्ति के समान दिखाई दें—प्रयोग किया जाना चाहिए । अनेक हाथी (या सर्प आदि) की आकृतियाँ इनमें खुदवायी जाएँ । इनमें सुन्दर पुतलियाँ खुदवायी जाएँ, इसकी

---

१. ऊह प्रत्यूह, निर्यूह तथा कुहर शब्द शिल्पशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं । परन्तु किसी प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थ में काष्ठशिल्प का व्यवस्थित उल्लेख प्राप्त न होने से विश्वासपूर्वक कुछ भी कहने की स्थित संभव नहीं । यहाँ 'निर्यूहकुहरोपेतम्' का अर्थ होगा लकड़ी के कोरों पर निर्मित खुदाई । यह शिल्पशास्त्र का एक परिभाषिक शब्द है जो उस समय प्रचलित रहा होगा । दीवार में चुनी हुई लकड़ी का बाहरी भाग भी 'निर्यूह' कहलाता है । (निर्यूह का अन्य अर्थ है कपोतपालिका परन्तु वह यहाँ पुनरुक्त हो जाने के कारण नहीं लिया जायगा क्योंकि 'कपोताली' शब्द इसी वर्णन में आया है) यदि निर्व्यूह पाठान्तर को माना जाय तो अर्थ होगा निश्चित स्वरूप वाले व्यवस्थापित छिद्रों से युक्त । मानसार वास्तुशास्त्र में 'निर्यूह' शब्द का अर्थ शिरोभूषण भी दिया है अभिनवगुप्त की व्याख्या इस स्थल पर विशेष प्रकाश नहीं डालती । 'यन्त्र' शब्द का एक अर्थ कुंडी (साँकल) है । 'कपोताली' का अर्थ है 'कपोतपालिका' या कबूतरों की छतरी । अन्य अर्थ इसका वही है जो 'निर्यूह' का है । माघ ने वितर्दिनिर्यूहविटङ्कनीडः (३।५५) में निर्यूह शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य भी उपर्युक्त ही प्रतीत होता है ।

---

१. निर्यूह—ग० । २. यन्त्रजाल—ग० ।
३. धरणी—ग० । ४. प्रवर्तयेत्—क, ग० ।

वेदिकाओं के नानाविध चित्र बाहर निकले हुए (निर्यूह) और भीतर खुदे हुए (कुहर) रहना चाहिए। इनकी रचना अनेक शैलियों से युक्त रहनी चाहिए और इनकी जालियाँ और झरोखे एक विचित्र सजावट के लिये हुए होने चाहिए। इनमें विद्यमान खम्भों के ऊपर सुन्दर तुलाएँ [धारणी] लगायी जाएँ जिनमें विचित्र स्वरूप वाली कबूतरों की छतरियों पंक्तिबद्ध (रखी हुई) दिखाई दें तथा फर्श पर खड़े किये गये खम्भों पर अनेक तरह की चित्रकारी रहनी चाहिये। इस प्रकार जब लकड़ी का कार्य और सजावट (आदि) पूर्ण हो जाए तो फिर दीवारों को उठाने का कार्य आरंभ किया जावे।

स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा ॥ ८४ ॥

कोणं[1] वा सप्रतिद्वारं [2]द्वारविद्धं न कारयेत्।

दीवारों को उठाने के अवसर पर कोई खम्भा, खूँटी, झरोखा या खिड़की अथवा कोना किसी दरवाजे के सामने न आने पावे अथवा किसी दरवाजे के सामने दूसरा दरवाजा न रखा जावे [या न खुलने पावे] ॥ ८४-८५ ॥

कार्यः शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्यमण्डपः ॥ ८५ ॥

मन्दवातायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दवान्[3]।

तस्मान्निवातः कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ॥ ८६ ॥

गंभीरस्वरता[4] येन कुतपस्य भवेदिति[5]।

यह नाट्यमण्डप (नाट्यगृह) पर्वत की गुफा के समान आकार लिये हुए और द्विभूमि[1] (पहले नीचा और फिर क्रमशः ऊँचा होने वाला या

१. 'द्विभूमि' नाट्यमण्डप का आशय है कि नाटयमण्डप दो मंजिला बनाया जाए। प्राचीन नाटकों में कुछ ऐसे दृश्य हैं जो दो मंजिले मण्डपों पर ही अभिनीत हो सकते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार यह ऊँचे-नीचे दो धरातलों के कारण द्विभूमि कहलाता है क्योंकि नेपथ्य और रंगशीर्ष का तल एक समान न हीं होता। शैल्पिक-विधाओं के पर्यालोचक द्विभूमि का अर्थ दो छत करते हैं। पर द्विभूमि का अर्थ दो फर्श 'नाटयशास्त्र' से थोड़ा मेलताल रखता

१. कार्ष्णायसं—क०। २. दारुविद्धं—ग०। ३. धीरशब्दभाक्—ग०।
४. गाम्भीर्यं सुस्वरत्वञ्च कुतपस्य भवेदिति—ग०।
५. भविष्यति—घ०।

दुमंजिला) बनाया जाए। इसमें झरोखे या खिड़कियों से हलकी-हलकी हवा आती रहनी चाहिए, यह तेज हवा से रहित (निर्वात) और गम्भीर शब्दों को गुँजाने वाला होना चाहिए [अर्थात् जिसमें उच्चरित शब्द की प्रतिध्वनि होती रहे।]। शिल्पीजन इसको निवात [जिसमें तेज हवा न आ पाए ऐसा] ही बनाएँ क्योंकि ऐसे मण्डप में सभी प्रकार के वाद्यों (कुतप) की ध्वनि में स्वरगत गाम्भीर्य बना रहता है ॥८५-८७॥

भित्तिकर्मविधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत् ॥ ८७ ॥
सुधाकर्म बहिस्तस्य[1] विधातव्यं प्रयत्नतः ।

भित्तियों को उठाने के बाद इन पर [पिसे हुए शंख, सीप आदि को बालू में मिला कर] चूने से लेप (पलस्तर) चढ़ाया जाए और इसके बाहरी भाग पर ध्यान पूर्वक चूने की पुताई की जाए ॥ ८७-८८ ॥

भित्तिष्वथ[2] विलिप्तासु परिमृष्टासु सर्वतः ॥ ८८ ॥
समासु जातशोभासु चित्रकर्म प्रयोजयेत्[3] ।

दीवारों पर पलस्तर हो जाने और (उनकी) घिसाई, घुटाई आदि हो जाने से चिकनी और समतल बन जाने के बाद इन भित्तियों पर चित्र रचना करवायी जाए ॥ ८८-८९ ॥

चित्रकर्मणि चालेख्याः पुरुषाः स्त्रीजनास्तथा ॥ ८९ ॥
लताबन्धाश्च कर्त्तव्याश्चरितञ्चात्मभोगजम् ।

अंकित किये जाने वाले चित्रों में लताबन्ध[1] तथा अन्य विलास क्रीडाओं वाले स्त्री पुरुषों के कार्य प्रदर्शित करने वाले चित्र रहें ॥८९-९०॥

है। अभिनव-गुप्त ने इस विषय में कई व्याख्याकारों के मन्तव्य उपस्थित किये हैं और इस प्रकार इस स्थल को विचारणीय कोटि में रख दिया है। निश्चय ही 'द्विभूमि' का अर्थ 'दो फर्श' उचित होगा।

१. 'लताबन्ध' या 'लतावेष्टन' संभोग के प्रकार हैं। 'आत्मभोगजम्' का अर्थ है स्त्री-पुरुषों की विलास क्रीड़ा या स्वयं के आनन्द से उत्पन्न होने वाले चरित। (चित्रकर्म 'अजन्ता' के चित्रों में आज भी देखा जा सकता है)।

---

१. तथैवस्य कुर्याद् बाह्ये प्रयत्नतः—घ०।
२. भित्तिष्वपि च लिप्तासु—ग०। ३. प्रवर्तयेत्—ग०।

एवं विकृष्टं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः ॥ ९० ॥

विकृष्ट [आयताकार] नाट्यगृह की इसी प्रकार प्रयोक्ताजन रचना करें ॥

चतुरस्र नाट्य-गृह का स्वरूप—

पुनरेव[1] हि वक्ष्यामि चतुरस्रस्य लक्षणम् ।
समन्ततश्च[2] कर्तव्या हस्ता द्वात्रिंशदेव हि ॥ ९१ ॥
शुभभूमिविभागस्थो नाट्यज्ञैर्नाट्यमण्डपः ।

अब मैं 'चतुरस्र' नाट्यगृह का लक्षण बतलाता हूँ—नाट्य के विज्ञाता पुरुषों के द्वारा शुद्ध भूमि पर विभाग पूर्वक अवस्थित चतुरस्र नाट्यगृह चारों ओर (चारों भुजाओं में) ३२ हाथ के प्रमाण का (चौकोन) बनाया जाना चाहिए ॥ ९१–९२ ॥

यो विधिः पूर्वमुक्तस्तु लक्षणं मङ्गलानि च ॥ ९२ ॥
विकृष्टे[3] तान्यशेषाणि चतुरस्रेऽपि कारयेत् ।

विकृष्ट नाट्यगृह के विषय में जो विधियाँ, लक्षण तथा मांगलिक विधि-विधान बतलाए गये हैं वे सभी चतुरस्र नाट्यगृह में भी (निर्माण आदि के अवसर पर सम्पन्न) किये जाएँ ॥ ९२–९३ ॥

चतुरस्रं समं कृत्वा सूत्रेण प्रविभज्य च ॥ ९३ ॥
बाह्यतः सर्वतः कार्या भित्तिः श्लिष्टेष्टका दृढा ।

चतुरस्र नाट्यगृह के क्षेत्र का समान विभाग कर तथा उसे सूत से [चारों ओर समान ३२ × ३२ हाथ] नापते हुए उसके बाहरी भाग से सटी हुई ईटों की दृढ़ दीवार उठा दी जाए ॥ ९३ ॥

तत्राभ्यन्तरतः कार्याः रङ्गपीठोपरि[4] स्थिताः ।
दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः शस्ताः मण्डपधारणे ॥ ९४ ॥

इसमें (रंगपीठ में) भीतर की ओर दिशा के विचार के अनुसार

---

१. अतः परं प्रवक्ष्यामि—ग० । २. समन्ततस्तु कर्तव्यो—ग० ।

३. चतुरस्रस्य तान्येव कारयेन्नाट्यवेश्मनः—ग० ।

४. रङ्गपीठे तथा दिशम्—घ० ।

निर्माता गण दस स्तम्भों को खड़ा करें जो इस मण्डप को सम्हालने में सक्षम हों[1] ॥ ९४ ॥

स्तम्भानां बाह्यतश्चापि सोपानाकृतिपीठकम् ।
इष्टका-दारुभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम् ॥ ९५ ॥

स्तम्भों से बाहर की ओर प्रेक्षकों के बैठने के लिए ईटों तथा लकड़ियों द्वारा सीढ़ियों के आकार में पीठक (आसन) बनाना चाहिए[2] ॥ ९५ ॥

हस्तप्रमाणैरुत्सेधैर्भूमिभागसमुत्थितैः ।
रङ्गपीठावलोक्यश्च[1] कुर्यादासनजं[2] विधिम् ॥ ९६ ॥

धरातल से एक हाथ ऊपर उठती हुई सीढ़ियों जैसी दर्शकों के लिए ऐसी बैठकें बनवाई जाएँ जहाँ से रंगपीठ भलीभाँति दिखलायी दे ॥ ९६ ॥

षडन्यानन्तरं[3] चैव पुनः स्तम्भान्यथादिशम् ।
विधिना स्थापयेत्तज्ज्ञो[4] दृढान्मण्डपधारणे ॥ ९७ ॥

और फिर विज्ञाता शिल्पी उचित दिशाओं में (प्रत्येक दिशाओं में) अन्तर देते हुए मण्डप को धारण करने में समर्थ छः दृढ़ स्तम्भों को लगावे ।

अष्टौ स्तम्भान्पुनश्चैव तेषामुपरि कल्पयेत् ।[5]
विद्वास्यमष्टहस्तं[6] च पीठं तेषु ततो न्यसेत् ॥ ९८ ॥

---

१. मूल से इन दस स्तम्भों की स्थिति स्पष्ट नहीं होती । अभिनवभारती का विवेचन भी उलझा हुआ है । अतएव इसका तात्पर्य वैसा ही होना चाहिए जैसा कि हमारा 'मानचित्र' है । (इसका विशेष विवेचन प्रस्तावना में भी देखिये) ।

२. 'सोपानाकृतिपीठकम्' का आशय है आसनों की प्रथम पंक्ति पृथ्वी से ऊँची हो, फिर क्रमशः एक दूसरे से ऊँची रखी जाएँ । ये कितनी ऊँची हों इसका विवेचन नहीं मिलता है पर संभवतः ये आठ इञ्च तक रखी जा सकती हैं ।

---

१. रङ्गपीठविलोक्यं च—ग० । २. दासनिकं—ग० ।
३. षडन्यान् सुन्दरान् दद्यात्—ग० । ४. धारयेत्—ग० ।
५. कारयेत्—ग० । ६. संस्थाप्यञ्च पुनः पीठमष्टहस्तप्रमाणतः—ग० ।

इसके पश्चात इनके ऊपर आठ खम्भे रखे। इनके ऊपर विधे हुए मुँह वाले आठ हाथों के शहतीरों (पीठ) को रखा जाए और इन शहतीरों के मुँह एक दूसरे में लगे हुए (विद्धास्य[1]) रहें ॥ ९८ ॥

तत्र स्तम्भाः प्रदातव्यास्तज्ज्ञैर्मण्डपधारणे।

धारणीधारणास्ते[1] च शालस्त्रीभिरलङ्कृताः ॥ ९९ ॥

विज्ञशिल्पी इसकी छत को धारण करने के लिये और शहतीर को सम्हालने के लिए खड़े किये जाने वाले मजबूत खम्भों को काष्ठ पुतलियों आदि से अलंकृत करते हुए लगावें[2] ॥ ९९ ॥

नेपथ्यगृहकञ्चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः[2]।

द्वारश्चैकं भवेत्तत्र[3] रंगपीठ-प्रवेशने[4] ॥ १०० ॥

फिर [रङ्गपीठ के पीछे ८ × ३२ हाथ के भूखण्ड पर] नेपथ्यगृह की प्रयत्न पूर्वक रचना की जाए। इसमें रङ्गपीठ पर खुलने वाले एक जैसे (दो) द्वार रखना चाहिए ॥ १०० ॥

जनप्रवेशनं चान्यदाभिमुख्येन कारयेत्।

रङ्गस्याभिमुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु ॥ १०१ ॥

रंगमंच के सामने वाले भाग में प्रेक्षकों के प्रवेशार्थ एक (अन्य) द्वार बनवाना चाहिये और नटों के प्रवेशार्थ निर्मित द्वार का रंगमंच के सम्मुख मुँह रहना चाहिये ॥ १०१ ॥

---

१. विद्धास्य का अर्थ है—बिंधे मुख वाले या रंगमंच की ओर मुखवाले।

२. शालस्त्री, शालभंजी या शालभञ्जिका स्त्रियों की प्रतिमा को कहते हैं। शालस्त्री की प्रतिमा के साथ वृक्ष या लता-वेष्ठित दिखलाया जाता था। ये स्तम्भों के शीर्ष (ब्रकेट) पर उत्कीर्ण की जाती थीं। शालभंजिका का एक अर्थ वेश्या भी है। कुछ भी हो अभिनवगुप्त द्वारा जो 'कान्ताप्रतिकृतयः काष्ठमय्यः' अर्थ दिया गया है वही उचित है। धारणी का अर्थ है–शहतीर; क्योंकि धारण का स्तम्भ अर्थ होता है।

---

१. धारणीधारितास्ते च—ग०। २. प्रयोक्तृभिः—घ०।

३. भवेत्तस्य—ग०। ४. रङ्गपीठप्रवेशनम् क०, ग०।

अष्टहस्तं तु कर्तव्यं रंगपीठं प्रमाणतः।
चतुरस्रं समतलं वेदिकासमलङ्कृतम् ॥ १०२ ॥

चतुरस्र नाट्यगृह का रंगपीठ आठ हाथ का चौकोन, (८ × ८) समतल और वेदिका से युक्त रंगपीठ के प्रमाणानुसार सुन्दर रूप में बनाया जाए ॥ १०२ ॥

पूर्वप्रमाण-निर्दिष्टा कर्तव्या मत्तवारणी।
चतुःस्तम्भसमायुक्ता वेदिकायास्तु पार्श्वतः ॥ १०३ ॥

वेदिका की (दोनों) बाजुओं में पूर्व निर्दिष्ट प्रमाण तथा विधि के अनुसार चार खम्भों से युक्त 'मत्तवारणी' का निर्माण किया जाए ॥ १०३ ॥

समुन्नतं समं चैव रंगशीर्षं[1] तु कारयेत्।
विकृष्टे[2] तून्नतं कार्यं चतुरश्रे समं तथा ॥ १०४ ॥

रंगपीठ की अपेक्षा ऊँचा और समतल [बराबर भेद से] (दो प्रकार का रंगशीर्ष बनाया जाता है। विकृष्ट में वेदिका से ऊँचा तथा चतुरस्र में समान एवं समतल रंगशीर्ष बनाया जाए ॥ १०४ ॥

एवमेतेन विधिना चतुरश्रं गृहं भवेत्।
अतः[3] परं प्रवक्ष्यामि त्र्यश्रगेहस्य लक्षणम् ॥ १०५ ॥

चतुरस्र नाट्यगृह की यही विधि है। अब मैं त्र्यश्र नाट्यगृह का लक्षण बतलाता हूँ ॥ १०५ ॥

त्र्यश्र नाट्यगृह का स्वरूप—

त्र्यश्रं त्रिकोणं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः।
मध्ये त्रिकोणमेवास्य रंगपीठं तु कारयेत् ॥ १०६ ॥

नाट्यगृह निर्मातागण त्र्यस्र नाट्यगृह को त्रिकोणाकृति बनवाएँ और इसके बीच में बनने वाले रंगपीठ को भी त्रिकोणाकृति ही बनवाना चाहिए ॥

१. रङ्गपीठं—ग०। २. विकृष्टेरुन्नतं—क; विकृष्टेस्तून्नतं—ख०, विकृष्टेऽप्युन्नतं—ग०। ३. त्र्यश्रस्य मण्डपस्यापि सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणम्—ग०।

द्वारं[1] तेनैव कोणेन कर्तव्यं तस्य वेश्मनः ।
द्वितीयञ्चैव कर्तव्यं रङ्गपीठस्य पृष्ठतः ॥ १०७ ॥

नाट्यगृह का प्रवेश द्वार इसी कोण में निर्माण करना चाहिए तथा रंगपीठ के पीछे दूसरा द्वार (पात्रों के प्रवेश आदि के लिए जो कि नेपथ्य से हों) भी ऐसा ही बनवाना चाहिए ॥ १०७ ॥

विधिर्यश्चतुरश्रस्य भित्तिस्तम्भसमाश्रयः ।
स तु सर्वः प्रयोक्तव्यः त्र्यश्रस्यापि प्रयोक्तृभि ॥ १०८ ॥

भित्ति तथा स्तम्भों के विषय में जो विधि चतुरस्र नाट्यगृह के लिये कही गई वही निर्मातागण त्र्यस्र के लिये भी प्रयोग में लाएँ[1] ॥ १०८ ॥

एवमेतेन विधिना कार्या[2] नाट्यगृहा बुधैः ।
पुनरेषां[3] प्रवक्ष्यामि पूजामेव यथाविधि ॥ १०९ ॥

इति भारतीये नाट्यशास्त्रे प्रेक्षागृहलक्षणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

बुद्धिमानों के द्वारा इसी प्रकार इन नाट्यगृहों की रचना की जाए । अब मैं (अगले अध्याय में) इनकी पूजा का विधि-विधान कहूँगा ॥ १०९ ॥

भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र की प्रदीप व्याख्या का 'प्रेक्षागृह-लक्षण' नामक द्वितीय अध्याय संपूर्ण ॥२॥

---

१. विकृष्ट तथा चतुरस्र नाटचगृहों की तरह 'त्र्यस्र' नाटचगृह में स्तम्भों तथा भित्तियों का विधान कैसा हो, यह स्पष्ट नहीं होता । इसका आशय इतना ही है कि दोनों नाटचगृहों की स्थिति देखकर 'त्र्यस्र' के अनुकूल स्तम्भों तथा भित्तियों का ऐसा विधान किया जाय जो उपयुक्त हो । यह सभी शिल्पिकों पर छोड़ दिया था, ऐसा प्रतीत होता है । 'त्र्यस्र' नाटचगृह में मत्तवारणी नहीं होती, ऐसा कुछ विवेचक-विद्वानों का मन्तव्य है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा संभव नहीं लगता । (देखिये त्र्यस्र प्रेक्षागृह का मानचित्र) ।

---

१. द्वारमेकेन कोणेन कर्तव्यं तु प्रवेशने — घ० ।
२. कार्यं नाटचगृहं — ग० ।
३. अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पूजामेषां यथाविधि — ग० ।